शान्ति मन्दिर द्वारा प्रकाशित यह ई-पत्रिका आप सबको समर्पित है ।

सिद्ध मार्ग

© Shanti Mandir

जनवरी २०२१, संस्करण ३६

शान्ति मन्दिर का ध्येय वाक्य ही है "लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु", हम प्रार्थना करते हैं कि "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः" अर्थात् सभी सुखी हों, सभी स्वस्थ हों।

प्रिय आत्मन् ! सप्रेम जय गुरुदेव ! सिद्धमार्ग पत्रिका का छत्तीसवाँ अंक प्रस्तुत है । इस अंक में महामण्डलेश्वर स्वामी नित्यानन्द जी द्वारा शान्ति मन्दिर, मगोद में दिये गये प्रवचन के कुछ अंश प्रस्तुत हैं।

॥ ॐ गुरु ॥

बाबा मुक्तानन्दजी के शब्दों में आप सभी का बड़े प्रेम और सम्मान के साथ हार्दिक स्वागत। २१वीं शताब्दी में हम रह तो रहे हैं लेकिन मनुष्य का व्यवहार एक-दूसरे के साथ उतना उत्तम या अच्छा नहीं हैं, हम भौतिक संसाधनों के उपभोग में ये भूल गये हैं कि हमारा जो व्यवहार है एक दूसरे के प्रति उसमें कितना परिवर्तन आया है किन्तु उस उपभोग को हम पचा नहीं पा रहे हैं अर्थात् जीवन में कोई ना कोई दुःख सबके है। शान्ति मन्दिर का ध्येय वाक्य ही है "लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु", हम प्रार्थना करते हैं कि "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः" अर्थात् सभी सुखी हों, सभी स्वस्थ हों। यहाँ "सर्वे" शब्द पर ध्यान देना है, हमारे ऋषियों ने सिर्फ मैं सुखी होऊँ ऐसी प्रार्थना नहीं की है, उन्होंने "सर्वे" की चर्चा की है अर्थात् जो प्रार्थना करने वाला है वह चाहे कोई महापुरुष हो या कोई व्यक्ति हो सभी के लिए प्रार्थना करता है अर्थात् मुझे अपने लिए अलग से प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं है। शास्त्र कहता है कि भयमुक्त जीवन जिओ किन्तु मनुष्य के अपने

भगवान से या सद्गुरु से प्रार्थना करते हैं कि हमें सद्बुद्धि दे जिससे हम अपना कल्याण करते हुए, दूसरों के लिए भी सही साबित हो सकें, हमसे जितना भी सत्कार्य उनके प्रति बन सके हम करें।

कर्म ही कुछ ऐसे हो जाते हैं जिससे स्वयं ही भयभीत रहते हुए जीवन-यापन करता है। यदि उससे पूछा जाए कि क्या वह भयमुक्त होना चाहता है तो यही कहेगा क्यों नहीं ! किन्तु हम भयमुक्त तभी जी पाएंगे जब दूसरों को भयमुक्त जीने दें। अर्थात् दूसरों की भलाई में ही हमारी भलाई है इसे समझना जरूरी है । किन्तु मनुष्य के अन्तःकरण में विद्यमान ईर्ष्या ऐसा करने से हमें रोकती है, हमारा अहंकार हमें सबसे आगे रखने की इच्छा में इतना प्रबल होता है कि हम दूसरे के बारे में भूल जाते हैं, हमें डर होता है कि कहीं दूसरा हमसे आगे न निकल जाए। इसी ईर्ष्या और आपसी मतभेद के कारण हम दूसरों के कार्यों में विघ्न इत्यादि बनकर उसको विफल करने में लग जाते हैं और उसका परिणाम क्या होता है कि हम अपना ही नुकसान कर बैठते हैं। ऐसा हो सकता है मनुष्य अपने स्वभाववश ऐसा करता है किन्तु हम इसी हेतु भगवान से या सद्गुरु से प्रार्थना करते हैं कि हमें सद्बुद्धि दे जिससे हम अपना कल्याण करते हुए, दूसरों के लिए भी सही साबित हो सकें, हमसे जितना भी सत्कार्य उनके प्रति बन सके हम करें। व्यक्ति को वर्तमान के मोबाईल युग में झूठ बोलने की आदत लग गई है अर्थात् हम किसी से फोन पर पूछें कि किधर हो तो होता कहीं है और बताता कहीं है। आधुनिक बच्चों को इस बात की आदत लग जाएगी कि हमें भी इसी तरह झूठ बोलना है और एक परम्परा शुरु हो जाएगी, आने वाली पीढ़ी को तो पता भी नहीं होगा कि झूठ बोलने का कारण क्या है ? वो सिफ इतना ही समझेंगे कि ये भी एक बात करने का तरीका है इसे अपनाना चाहिए। इस इण्टरनेट के युग में व्यक्ति को सभी वस्तुएं इतनी सुलभ हो गयी हैं कि वह भूल गया है या भूल जाएगा कि परिश्रम क्या है? बस एक चीज है जो अस्तित्व में आई है वह है होड़, हर व्यक्ति होड़ में लगा हुआ है। अपनी प्रतिभा दिखाने की बजाए लगा हुआ है दूसरे के द्वारा किए हुए कार्य को अपनाने में अर्थात् उसने स्वविवेक या विचार को संकुचित कर लिया है। बाबा मुक्तानन्दजी एक कहानी सुनाया करते थे कि एक बार नसरुद्दीन ने १० लोगों के भोजन की व्यवस्था की, उसके लिए वह बर्तन लेने पड़ोसी के पास गया और बोला दस इत्यादि लोगों के लिए भोजन बन सके इतना बड़ा बर्तन चाहिए तो पड़ोसी ने कहा ठीक है उसने दे दिया। भोजन इत्यादि सब हो गया, दो-तीन दिन बाद उसने उस बड़े बर्तन में छोटे-छोटे बर्तन डालकर दे दिए। पड़ोसी ने कहा ये अतिरिक्त बर्तन मेरे नहीं हैं, नसरुद्दीन ने कहा कि मेरे घर में रहते हुए इनके बच्चे हो गए। पड़ोसी बहुत खुश हुआ उसने मन ही मन कहा कि ये पड़ोसी बहुत बढ़िया है। दो

इस संसार में भौतिक-वस्तुओं का उपयोग करते हुए परमार्थ की सिद्धि सिर्फ कल्पनामात्र है हमें उस परमात्मा को प्राप्त करने हेतु पुरुषार्थ करना होगा, हमें अपना मार्ग बदलना होगा, अपने व्यवहार में परिवर्तन लाना होगा।

तीन महीने व्यतीत हुए नसरुद्दीन पुनः उसके पास गया उसने उससे कहा कि अभी हजार लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था है अतः बर्तन आवश्यक हैं और पहले से भी बड़े चाहिए, पड़ोसी के मन में वही लालच था तीन महीने पूर्व का अतः बहुत खुशी से बर्तन दे दिए। मनुष्य की यही सबसे बड़ी कमजोरी है कि वह अपने बनाएं चक्कर में फंस जाता है, स्वयं ही नहीं समझ में आता कि मैं कैसे फंस गया या फंस रहा हूं। बर्तन दिए हुए दस दिन हुए, पन्द्रह दिन हुए पड़ोसी सोचता है कि बच्चे होने में समय तो लगता ही है ! अर्थात् समय लगने दो इस बार ज्यादा बच्चे (बर्तन) मिलेंगे। बीस दिन व्यतीत होने के बाद उसने कहा कि नसरुद्दीन कुछ खबर नहीं दे रहा है, वह उसके पास गया दरवाजा खटखटाया, नसरुद्दीन ने दरवाजा खोला उसका मुंह उतरा हुआ देखकर पड़ोसी ने पूछा कि क्या हुआ? वो बर्तन? नसरुदीन ने जवाब दिया कि बर्तन तो मर गये ! वह पुनः बोला कि नहीं मैंने जो बर्तन दिए थे न हजार लोगों के भोजन के लिए वो ? हां, वही तो मर गये,, नसरुदीन ने कहा। पड़ोसी ने कहा बर्तन थोड़े ही मरते हैं ! नसरुद्दीन ने तुरन्त कहा कि अगर बर्तन मरते नहीं हैं तो बर्तन के बच्चे कब होते हैं ? यदि तुमने बर्तन बच्चे समझकर ले लिए तो अब ये भी स्वीकार करो कि बर्तन मर भी गये। बाबाजी बहुत हंसा करते थे कि कैसे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को बना देता था। ये बात आज से पचास साल पहले भी अगर मान लो तब भी हम कैसे झूठ बोला करते थे और ये तो इण्टरनेट का युग है तो इसमें उसका प्रतिशत कितना बढ़ गया होगा सोचो! क्योंकि आजकल तो एक-दूसरे से हम मिलते भी नहीं है। अगर हम कर्म के सिद्धान्त को मानते हैं ना तो हम कहीं ना कहीं वो पड़ोसी रहे होंगे तभी न हम इक्कीसवीं सदी में भी वही कर रहे हैं जो हम चाणक्य, कालिदास (उदाहरण के तौर पर) के समय किया करते थे। हमने भी कभी किसी ना किसी को बनाया होगा तब ना ये हमारे साथ घटित हुआ है। अतः हमें अपने कर्म विवेक से, विचार करके करने चाहिए। यदि ये कहा जाता है कि सत्संग करने से ये विवेक आ जाता है कि संसार अनित्य है और यहाँ सबकुछ त्याज्य है, सब विनाशी है तो मैं कहूँगा कि इतना भी आसान नहीं है इस माया का त्याग। लोग इसी में तो फँस जाते है कि ये तेरा है और ये मेरा है, कुछ लोगों के लिए जो उनका है वो तो उनका है ही किन्तु जो आपका है वो भी उनका है। अतः इस संसार में भौतिक-वस्तुओं का उपयोग करते हुए परमार्थ की सिद्धि सिर्फ कल्पनामात्र है हमें उस परमात्मा को प्राप्त करने हेतु पुरुषार्थ करना होगा, हमें अपना मार्ग बदलना होगा, अपने व्यवहार में

भौतिकवाद से अध्यात्म की ओर अपनी बुद्धि को प्रेरित करना होगा , शास्त्र में दिए हुए मन्त्रों का मनन-चिन्तन करना होगा, उनके अर्थों को भलीभंति जानकर आचरण में लाना होगा अर्थात् शास्त्रसम्मत चलना होगा तब जाकर परमात्मा की सिद्धि के हम अधिकारी हो पाएंगे, यहां भी ये निश्चित नहीं हैं कि तुम्हें उसकी प्राप्ति होगी।

परिवर्तन लाना होगा। भौतिकवाद से अध्यात्म की ओर अपनी बुद्धि को प्रेरित करना होगा , शास्त्र में दिए हुए मन्त्रों का मनन-चिन्तन करना होगा, उनके अर्थों को भलीभंति जानकर आचरण में लाना होगा अर्थात् शास्त्रसम्मत चलना होगा तब जाकर परमात्मा की सिद्धि के हम अधिकारी हो पाएंगे, यहां भी ये निश्चित नहीं हैं कि तुम्हें उसकी प्राप्ति होगी। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि "मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये .....कश्चिद् मां वेत्ति तत्त्वतः" अर्थात् हममें भी जिनकी संख्या सहस्र (हजार) हो उनमें से भी कोई एक ही विरला या भाग्यवान् होता है जो भगवान् के परमस्वरूप को जान पाता है और अपना कल्याण कर पाता है। क्योंकि हम में से कुछ तो बीच में छोड़कर ही चले जाते हैं, कुछ में श्रद्धा का अभाव होता है कुछ को भौतिकवाद फिर से अपनी ओर खींच लेता है और कुछ होते हैं जो दोहरी जिन्दगी जीते हैं वो अध्यात्म में भी रहते हैं और भौतिकवाद में भी अपना मन लगाए रहते हैं तो कुछ अपनी जीवन में आने वाली परिस्थितियों से परेशान होकर दूसरा जीवन अपना लेते हैं। इसलिए भगवान ने कहा कि कोई एक ही होता है जो मेरी सच में चाह रखता है, मुझे प्राप्त करना चाहता है और वो एक ही अध्यात्म में लीन होकर सतसंग इत्यादि में भाग लेकर बस भगवान् की ही खोज करता रहता है। यही चाह उसे सद्गुरु के पास ले जाती है फिर वह उसी सद्गुरु की शरण में रहकर ध्यान इत्यादि क्रियाएं करता है, उनकी सेवा करता है और उन्हीं में उस परमपिता परमेश्वर का स्वरूप देखने लगता है, उसकी श्रद्धा गुरुनिष्ठ हो जाती है फिर वह उनको छोड़ने के विचार को व्यर्थ समझता है। ध्यान, जप, तप इत्यादि से अपने जीवन को जीता हुआ वह अन्त में गुरुकृपा से अपना कल्याण करता है। हर व्यक्ति परमसुख की अनुभूति चाहता है किन्तु उसका अन्वेषण भौतिक-वस्तुओं में करता है। अब चूंकि भौतिकता तो समाप्त होनी है यहाँ संसार में जो भी कुछ है उसका विनाश निश्चित है तो सुख कहाँ से प्राप्त हो ! उस सुख की चाह में हम भोग में लिप्त हो जाते हैं और फिर वहाँ से हमारा पतन शुरु हो जाता है, हमें ही ज्ञान नहीं होता है कि किधर जा रहे हैं क्योंकि भोग में जो लगे हैं। भोग करते-करते उसकी हमें इतनी आदत हो जाती है कि हमें लगता है कि हमें यही करना चाहिए अब जब उसमें भी कमी आने लगती है तो उत्पन्न होता है मानसिक-तनाव, ये तनाव व्यक्ति को क्या से क्या नहीं करवा देता अर्थात् वह वो सबकुछ करना चाहता है जिससे मन को सन्तुष्टि प्राप्त हो। हम व्यस्त होते हैं अपने ही कर्म में अपने ही विचारों में किसी

स्थिरता का तात्पर्य यहाँ बाह्यस्थिरता से नहीं है अपितु अन्तःकरण की स्थिरता की चर्चा शास्त्रों में की गई है और उस अन्तरंग स्थिरता लाने में आपका अपना प्रयास होना चाहिए, वो स्थिरता आपकी चाल में, वाणी में, कर्म में, विचार में आएगी।

से कोई मतलब नहीं। अभी हाल में ही अमेरिका में एक पुल है "Goldena bridge" के नाम से सेनफ्रेंसिस्को शहर में, लोग उस ब्रिज को देखने बहुत जाते हैं और एक व्यक्ति रोता हुआ उस ब्रिज पर जा रहा है, कोई व्यक्ति उस व्यक्ति को कैमरा देता है कि मेरा इस ब्रिज पर एक फोटो निकालो व्यक्ति उसका फोटो निकालता है कैमरे वाला व्यक्ति अपना फोटो देखता है इतने में जिसने फोटो निकाला वह उस ब्रिज से गिरकर अपनी जान दे देता है और कहते हैं कि ये एक मशहूर ब्रिज है जहाँ लोग अपनी जान गंवाते हैं। मानसशास्त्री यहाँ एक प्रश्न करता है कि कोई एक भी व्यक्ति उस रोते हुए व्यक्ति की तरफ मुस्करा देता तो वह हमारे बीच जीवित होता। किन्तु उसकी आंखों की तरफ, उसके दुःख की तरफ किसी ने दृष्टि डाली ही नहीं अर्थात् उस ब्रिज पर इतने सारे लोग होते हुए भी उसने अकेलापन महसूस किया। सोचिए विचार कीजिए क्या कर रहे हैं हम अपने समाज के साथ ? क्योंकि आधुनिक युग में वैसे तो सब एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं किन्तु आपस में एक प्रेम का भाव या रिश्ता होता है उसका ह्रास हो रहा है, वह शून्यता की ओर बढ़ रहा है। यही रिश्ता या भाव बढ़ाने का सरल मार्ग है एक-दूसरे से संवाद करो किन्तु संवाद विचार का होना चाहिए, मूर्खता का नहीं। जैसा कि हमारा शास्त्र कहता है कि "काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्" तो हमें बुद्धिमान बनना है, अपने विचार को लेकर संवाद करना है,चर्चा करनी है और एक-दूसरे के साथ प्रेम से रहते हुए अपना जीवन-यापन करना है। मैं कई बार कहता हूँ कि पातञ्जलमहाभाष्य में आता है "स्थिरम्, सुखम्, आसनम्", शब्द बहुत सरल है किन्तु आसान नहीं हैं स्थिर होना बहुत सारे विचार, बहुत सारी बातें लेकर हम जीवन जीते हैं जो कि हमें स्थिर होने में बाधा बनते हैं। स्थिरता का तात्पर्य यहाँ बाह्यस्थिरता से नहीं है अपितु अन्तःकरण की स्थिरता की चर्चा शास्त्रों में की गई है और उस अन्तरंग स्थिरता लाने में आपका अपना प्रयास होना चाहिए, वो स्थिरता आपकी चाल में, वाणी में, कर्म में, विचार में आएगी। जीवन एक दौड़ है और उस अनर्थक दौड़ में असन्तुष्ट व्यक्ति लगा हुआ है, स्वतः ही नहीं अन्यों को भी लेकर क्योंकि व्यक्ति का स्वभाव है कि वह अकेला नहीं जाना चाहता है उसे किसी का साथ चाहिए। गीता में कहा गया है कि "अशान्तस्य कुतः सुखम्" अर्थात् स्थिर कब होंगे जब शान्त होंगे और शान्त कब होंगे जब स्थिर होंगे। इस हेतु आपको अपने प्रत्येक कर्म में एक लय बनानी होगी। हमें आपने आपको साधक बनाना होगा, एकात्मस्वरूपी प्रवाह को लेकर जीवन जीना होगा,

यदि व्यक्ति का भाग्य अच्छा है तो उसको सद्गुरु मिल जाते हैं और उनकी शरण में वह पूरी तरह समर्पित भाव से जीवन यापन करता है तो वह इहलोक और परलोक अपने सुधार लेता है।

व्यक्ति जब द्विधा हो जाता है तो बीच का रह जाता है अर्थात् ना साधक ही बन पाता है और ना ही भौतिक संसार के क्षणिक सुख को प्राप्त कर पाता है। वह दुविधा में फंस जाता है कि अब क्या करूँ? इसी दुविधा के कारण वह मानसिक शान्ति खो देता है क्योंकि इतने सारे विचार चूंकि संसार इतना बड़ा है तो इतने सारे मार्ग, उसको समझ में नहीं आता है कि वह खोई हुई शान्ति पुनः कैसे प्राप्त करे ? फिर यदि व्यक्ति का भाग्य अच्छा है तो उसको सद्गुरु मिल जाते हैं और उनकी शरण में वह पूरी तरह समर्पित भाव से जीवन यापन करता है तो वह इहलोक और परलोक सुधार लेता है तथा अपने कल्याण हेतु एक ऐसे पथ पर चलता है जो दूर से तो लगता है कि सरल है किन्तु जब वह उस मार्ग में प्रवेश करता है तब अभिज्ञान होता है कि यह तो बहुत दुर्गम है मैं अकेला कैसे पार करूँ? किन्तु गुरुकृपा से मनुष्य उस मार्ग को पार कर जाता है। "गुरुकृपा हि केवलम्" अर्थात् गुरुकृपा ही है जो इस भवसागर में तुम्हें उस पार पहुँचा सकती है, उसके लिए तुम्हें चाहिए तो वो है श्रद्धा, विश्वास और गुरु के प्रति समर्पितभाव। पुन: सभी का बड़े प्रेम और सम्मान से हार्दिक स्वागत।

॥ सद्गुरुनाथ महाराज की जय ॥